कहे गये हैं, जो भगवद्धाम में श्रीभगवान् को प्राप्त करने के सच्चे अभिलाषी हैं। महात्माजन इन विधानों का दृढ़ता से पालन करते हैं; अतएव उनके लिए अभिलाषित लक्ष्य की प्राप्ति निश्चित है।

जैसा अध्याय के द्वितीय श्लोक में वर्णन है, यह भक्तियोग सुगम होने के साथ ही आह्लादपूर्वक सम्पादित किया जा सकता है। इसके लिए किसी कठोर तप-त्याग की अपेक्षा नहीं है। विदग्ध सद्गुरु के आश्रय में गृहस्थी, संन्यासी अथवा ब्रह्मचारी–किसी भी स्थिति में, विश्व के किसी भी स्थान में, भक्तिभावित जीवन व्यतीत करने वाला कोई भी मनुष्य इस भगवद्भक्तियोग के द्वारा वास्तव में महात्मा बन सकता है।

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजन्तो मामुपासते।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम्।।१५।।

ज्ञानयज्ञेन=ज्ञान के अनुशीलन से; **च**=भी; **अपि**=निस्सन्देह; **अन्ये**=दूसरे; **यजन्तः**=यज्ञ से; **माम्**=मुझे; **उपासते**=उपासते हैं; **एकत्वेन**=एकत्व में; **पृथक्त्वेन**=द्वैत भाव में; **बहुधा**=अनेक प्रकार से; **विश्वतःमुखम्**=विश्वरूप (में)।

अनुवाद

दूसरे जो ज्ञान के अनुशीलन में तत्पर हैं, वे मुझे परमेश्वर को अद्वय-रूप में, विविध रूपों में और विश्वरूप में भी उपासते हैं।।१५।।

तात्पर्य

यह श्लोक इस प्रकरण के पूर्ववर्ती श्लोकों का उपसंहार है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि जो अनन्य भक्त उन (कृष्ण) के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते और विशुद्ध कृष्णभावना से भावित हैं, वे महात्मा कहलाते हैं। परन्तु ऐसे भी मनुष्य हैं, जो यथार्थ में महात्मा तो नहीं हैं, पर वे भी नाना रीतियों से श्रीकृष्ण की आराधना करते हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख पूर्व में हो चुका है, जैसे—आर्त, अर्थार्थी, जिज्ञासु और ज्ञानी। इनसे भी निम्न मनुष्यों की तीन अन्य कोटियाँ हैं: (१) अहंग्रहोपासक (परमेश्वर और अपने में एकीभाव मानकर उपासना करने वाले), (२) प्रतीकोपासक (परमेश्वर के किसी मनोकल्पित रूप के उपासक), और (३) विश्वरूपोपासक (जो श्रीभगवान् के विश्वरूप को स्वीकार कर उसकी आराधना करते हैं)। इन तीनों में, जो अपने को परमेश्वर समझ कर उपासते हैं वे अद्वैतवादी सबसे अधम हैं। मनुष्यों में इन्हीं की प्रधानता है। ये अपने को परमेश्वर मानकर अपनी ही उपासना करते हैं। यह भी एक प्रकार से ईश्वर की उपासना है, क्योंकि इससे वे यह जान सकते हैं कि उनका स्वरूप प्राकृत देह न होकर चिन्मय आत्मा है। उनमें कम से कम इस विवेक का अतिरेक तो रहता ही है। सामान्यतः निर्विशेषवादी परमेश्वर को इसी विधि से उपासते हैं। द्वितीय कोटि में देवोपासक हैं। ये मनोकल्पना के अनुसार किसी भी रूप को भगवत्-रूप मान लेते हैं। तृतीय श्रेणी में वे मनुष्य हैं, जो इस प्राकृत ब्रह्माण्डीय अभिव्यक्ति (विश्वरूप) से परे किसी भी तत्त्व का चिन्तन नहीं कर